# न्याय दर्शन : ज्ञान के प्रकार तथा प्रमा और अप्रमा

भारतीय न्यायशास्त्र में ज्ञान के वर्गीकरण का ढंग पाश्चात्य तर्कशास्त्र से भिन्न है। पाश्चात्य तर्कशास्त्र के अनुसार ज्ञान के साधारणतः दो भेद किये जाते हैं- साक्षात् (Immediate) और असाक्षात् (Mediate)। ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न ज्ञान को साक्षात् ज्ञान कहा जाता है। यथा पुस्तक का आँखों से संबंध होने पर पुस्तक का जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे साक्षात् ज्ञान कहते हैं। किन्तु इन्द्रियों से परे विषयों का ज्ञान जो किसी माध्यम के द्वारा प्राप्त होता है उसे असाक्षात् ज्ञान कहते हैं। यथा सुबह सोकर उठने पर अपने इर्द-गिर्द पानी लगा देखकर वर्षा का ज्ञान। वर्षा का ज्ञान सीधे न होकर इर्द-गिर्द लगे पानी के माध्यम से होने के कारण हम इस ज्ञान को असाक्षात् ज्ञान कहते हैं।

किन्तु भारतीय न्याय दर्शन में ज्ञान के वर्गीकरण का दृष्टिकोण दूसरा है। यहाँ ज्ञान के दो भेद किये जाते हैं - स्मृति और अनुभव। स्मृति-ज्ञान किसी वस्तु से उत्पन्न न होकर पूर्वज्ञात वस्तु के संस्कार से उत्पन्न होता है। यहाँ वस्तु की सीधी अनुभूति नहीं होती बल्कि वस्तु की अनुपस्थिति में उसके संस्कार द्वारा इसका स्मरण होता है। जैसे आग के अनुभव में गर्मी मालूम होगी पर उसकी स्मृति में गर्मी नहीं होगी। अर्थात स्मृति में वस्तु की उपस्थिति नहीं रहती, पर अनुभव में वस्तु की उपस्थिति रहती है। अतः अनुभव स्मृति से भिन्न है।

अनुभव भी दो प्रकार का होता है → यथार्थ और अयथार्थ। यथार्थ अनुभव को प्रमा कहा जाता है तथा अयथार्थ अनुभव को अप्रमा। अन्नम्भट्ट ने अपने तर्क संग्रह में इस प्रकार कहा है— "जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में समझना प्रमा है।" और इसके ठीक विपरीत "जिस रूप में उसका अभाव हो उस रूप में उसे समझना अप्रमा है।" उदाहरण स्वरूप यदि हम किसी रेगिस्तान में बालू की मैदान को ठीक बालुकामय ही समझते हैं तो यह प्रमा है किन्तु यदि हम इसे पानी का घोल समझ बैठते हैं तो यह अप्रमा है। यानि विश्लेषण करने पर प्रमा के तीन लक्षण मिलते हैं (1) अनुभवत्व (2) असंदिग्धत्व तथा (3) यथार्थत्व। अर्थात किसी वस्तु के असंदिग्ध यथार्थ अनुभव को प्रमा कहते हैं। उदाहरण स्वरूप हमें टेबुल का ज्ञान हो रहा है। अब हम इसे प्रमा कह सकते हैं क्योंकि (1) टेबुल का साक्षात अनुभव हो रहा है (2) यह अनुभव असंदिग्ध रूप में हो रहा है तथा (3) इसमें टेबुल का यथार्थ अर्थात सही-सही ज्ञान प्राप्त हो रहा है।

न्यायशास्त्र में प्रमा के चार भेद माने जाते हैं → (1) प्रत्यक्ष,

(02) अनुमिति; (03) उपमिति और (04) शाब्द: जो क्रमशः प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द नामक साधनों से उत्पन्न होते हैं।

अप्रमा के तीन भेद हैं (01) संशय (02) भ्रम और (03) तर्क। अब देखना है कि इन तीनों को प्रमा की कोटि में न रखकर अप्रमा की कोटि में क्यों रखा गया है।

संशय में यद्यपि अनुभव होता है किन्तु असंदिग्धता नहीं रहती, जिसके कारण इसे "अप्रमा" कहते हैं। यदि रात में हम दूर खड़ी आकृति को देखकर यह निश्चय नहीं कर पाते हैं कि यह आदमी है या कोई खम्भा तो इसे संशय कहा जाता है। यहाँ वस्तु विशेष का अनुभव तो अवश्य होता है किन्तु निश्चितता या असंदिग्धता नहीं हो पाती है।

भ्रम में यद्यपि अनुभव भी होता है तथा असंदिग्धता भी रहती है फिर भी चूँकि इसमें वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता अतः इसे अप्रमा कहते हैं। हम रात के अंधेरे या जल्दी में रस्सी को सर्प समझकर भाग खड़े होते हैं तो यहाँ वस्तु का अनुभव भी होता है तथा अनुभव में (सर्प समझने में निश्चितता या असंदिग्धता का भी बोध होता है। फिर भी चूँकि यह रस्सी यथार्थ रूप में रस्सी प्रतीत न होकर सर्प प्रतीत होती है अतः इस भ्रम को अप्रमा कहते हैं।

तर्क को अप्रमा इस कारण कहते हैं कि इसमें वस्तु का अनुभव नहीं होता बल्कि पूर्व अनुभव की पुष्टि मात्र होती है। यह ज्ञान को उत्पन्न नहीं करता, वरन उत्पन्न ज्ञान को युक्ति द्वारा बल प्रदान करता है। उदाहरण स्वरूप हम जानते हैं कि अमुक लड़की विवाहिता है। फिर भी यदि कोई इसे गलत कहता तो हम निम्नलिखित तर्क द्वारा इसके कथन का खण्डन और अपने पूर्व ज्ञान की पुष्टि करते हैं - यदि यह लड़की विवाहिता नहीं होती तो सिन्दूर नहीं लगाती। यह सिन्दूर लगाती है अतः यह विवाहिता है। यहाँ इस तर्क से हमें कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होता है बल्कि हमारे ज्ञान को युक्ति द्वारा पुष्टि मिलती है। अतः इसे भी प्रमा नहीं माना जा सकता।

प्रमा के अंग— प्रमा या यथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति तीन चीजों पर निर्भर करती है। (01) प्रमाता या यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाला, (02) प्रमेय या यथार्थ रूप से ज्ञात होने वाला विषय और (03) प्रमाण या यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का साधन। इन्हीं तीनों अंगों के द्वारा प्रमा या यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है।

(01) प्रमाता— ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी ज्ञान प्राप्त करने वाले की आवश्यकता होती है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए यदि कोई यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाला (प्रमाता) नहीं रहे तो यथार्थ ज्ञान (प्रमा) को धारण कौन करेगा? अतः प्रमा की उत्पत्ति के लिए किसी चेतन मनुष्य का होना अनिवार्य है।

(02) प्रमेय— प्रमाता ज्ञान तभी प्राप्त कर सकता है यदि उसके सामने कोई ज्ञान का विषय हो। ज्ञान के लिए विषय का होना आवश्यक है। ज्ञान शून्य का तो प्राप्त नहीं होता है। ज्ञान की संभावना ज्ञाता एवं ज्ञेय के द्वैत पर आधारित है। जानने वाले व्यक्ति तथा जाना जाने वाला विषय के अभाव में ज्ञान संभव नहीं है। अतः प्रमेय प्रमाता के ज्ञान के लिए प्रमेय का रहना आवश्यक है।

(03) प्रमाण— प्रमाता तथा प्रमेय दोनों के उपस्थिति के बावजूद भी तबतक ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता है जबतक किसी साधन द्वारा दोनों में संबंध नहीं हो जाता। जिस साधन द्वारा प्रमाता तथा प्रमेय में संबंध होता है उसे ही प्रमाण कहते हैं। यदि किसी अंधे के सामने कोई सर्प आ जाय तो भी उसे इसका ज्ञान नहीं होता। यद्यपि कि प्रमाता के रूप में अंधा पुरुष तथा प्रमेय के रूप में सर्प— दोनों ही विद्यमान होते हैं। जिस साधन द्वारा प्रमाता को प्रमेय का ज्ञान हो सकता है उस साधन (अर्थात चाक्षुष प्रत्यक्ष) का यहाँ अभाव है।

प्रमाण की संख्या— पाश्चात्य तर्कशास्त्र में सामान्यतया दो प्रमाण ही माने जाते हैं— (01) प्रत्यक्ष तथा (02) अनुमान। किन्तु प्रमाण की संख्या को लेकर भारतीय दार्शनिकों (विचारकों) में मतैक्यता का अभाव है। भारतीय दर्शन में एक से लेकर आठ तक प्रमाण माने जाते हैं। चार्वाक एकमात्र "प्रत्यक्ष" को ही प्रमाण मानता है। बौद्ध तथा वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान दो प्रमाण माने गये हैं। सांख्य दर्शन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान के अतिरिक्त "शब्द" को भी एक तीसरा प्रमाण माना गया है। न्याय दर्शन— प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द एवं उपमान इन चार प्रमाणों में विश्वास करता है। अद्वैत वेदान्त एवं प्रभाकर

मीमांसा इन चारों के अतिरिक्त "अर्थापत्ति" को एक मौलिक प्रमाण स्वीकार करता है। भाट्ट मीमांसा और अद्वैत वेदान्त में एक छठा प्रमाण "अनुपलब्धि" भी माना गया है। इस तरह कुल छः प्रमाण हो जाता है। पौराणिकों इन छः के अलावा "सम्भव" और "ऐतिह्य" नामक और दो प्रमाण मान कर प्रमाणों की कुल संख्या आठ कर दी है।

डा० सन्तोष कुमार सिंह
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र
अनजीवित सिंह महाविद्यालय,
विक्रमगंज (रोहतास)।